The Secret of Creation

Baba Faqir Chand

रचना का भेद

लेखक :

परम संत परम दयाल पं.

फकीरचन्द जी महाराज

भूमिका

जब चेतनता हुई, दुनिया को देखा। विचार आया कि कौन बनाने वाला है इसका? किसने बनाई? क्यों बनाई। बनाने का उद्देश्य क्या था? सारा जीवन इसी धुन में बीता। भिन्न भिन्न महान पुरुष अपनी खोज का परिणाम जो उनकी समझ में आया, लिख गये। मैंने उनको पढ़ा और उनके बताये रास्ते पर चला मगर चित्त स्वतन्त्रता और सच्चाई का पुजारी था, मैं नाक कटों में शामिल नहीं हुआ। चूँकि हर एक महापुरुष ने दूसरों का खंडन करके अपनी बात को सच्चा कहा, इसलिये मैं हर एक चीज को स्वयं देखना, जानना और पहिचानना चाहता था। मैंने प्रण किया था कि मैं अपना अनुभव कह जाऊँगा। दाता दयाल (महर्षि शिव) ने दया करके मुझको गुरु पदवी देकर अनुभव वर्णन करने का यह अवसर दिया। इसलिये मैं बहुत कुछ इस

रचना अर्थात् जीवन की विभिन्न अवस्थाओं तथा चेतनताओं पर निज अनुभव के आधार पर आज ३०-३५ वर्ष से काम करता आ रहा हूँ। इस पुस्तक में चूँकि मैंने रचना के विषय पर वर्णन किया है इसलिये इस पुस्तक का नाम भी "रचना का भेद" रखकर अपना कर्म भोग पूरा कर रहा हूँ ताकि जो लोग मेरी तरह इस खोज में हैं उनको कुछ भेद ज्ञात हो और शान्ति मिले।

ऐ धार्मिक जगत के लोगो! मैंने अपनी नीयत से अपने जैसे खोजियों के लिये हितैषी बनकर काम किया है। मेरे साहित्य को पढ़ने वालो! तुम स्वयं अनुमान लगाओ कि क्या किसी सम्प्रदाय वाले किसी गुरु ने, किसी पंथ ने तुमको इस रचना के चक्र से निकलने और शान्ति देने के लिये इतनी सच्चाई और स्पष्टता से काम किया है? मेरा ख्याल है किसी ने भी नहीं। सबने तुम लोगों को किसी धर्म, पंथ या किसी व्यक्ति के साथ

बाँधने की कोशिश की है। निर्बन्ध करने का प्रयत्न नहीं किया। जो स्वयं बंधा हुआ है वह तुमको कैसे स्वतन्त्र करेगा।

बंधुये को बंधुआ मिला, छूटे कौन उपाय।
कर सत्संग निर्बन्ध का, पल में लेय छुड़ाय॥

मुझे पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में यह मेरा काम मानव वंश के लिये पथ-प्रदर्शन का काम करेगा।

भेंट

मैं इस पुस्तक को वर्तनान राधास्वामी मत वाले, दूसरे अन्य सन्त अथवा जो गुरुयायी का काम करते हैं; दूसरे शब्दों में जीव को इस रचना में जो दुख होते हैं, उनमें सुखी रहने का उपदेश करते हैं, उनके चरण कमल में भेंट करता हूँ। मुझे किसी बात का कोई दावा नहीं है। मेरा जीवन खोज में बीता है। हो सकता है मेरा अनुभव गलत हो मगर मेरी नीयत गलत नहीं। मैं न लोगों को किसी सम्प्रदाय में, सम्मिलित करना चाहता हूँ न पंथ में। केवल सच्चे ज्ञान या सच्चे भेद की ओर सर्व-साधारण का ध्यान बदलने का यत्न करता हूँ। यही राधास्वामी मत है, यही कबीर मत है, यही नानक-मत है और यही ऋषि मत है जो समझ, भेद, और ज्ञान देता है। किसी का ज्ञान फैला! इन्सान क्या है? कैसे बना? क्यों बना? आदि-२! स्वामी जी कहते हैं-

गुरु ने दीना भेद अगम का।
सुरत चली तज देश भरम का॥
भटकन छूटा दैरो हरम का।
संशय भागा जनम मरने का॥

रचना का भेद
सृष्टि का बनाने वाला कौन है।

(प्रवचन मानवता मन्दिर होशियारपुर 19-11-1968)

यह शब्द पढ़ा गया :-

तेरी स्तुति हित चित से गाऊँ, धन
धन धन धन राधास्वामी।
तेरे ध्यान में हिया जिया उमगाऊँ, धन
धन धन धन राधास्वामी।
गुरु रूप में प्रगट हुआ जग में, जीवों को
चिता के किया मग में।

....

इस शब्द में लिखा हैं कि जीवों को चिता के किया मग में। अब बुढ़ापा है। बचपन से उस मालिक की खोज का विचार आया था और यह भी विचार उत्पन्न हुआ था कि यह जो सृष्टि

दृष्टिगोचर हो रही है, किसने बनाई? साथ ही अन्तर में चार प्रश्न उत्पन्न हुये- (१) सृष्टि का बनाने वाला कौन है? (२) सृष्टि क्यों बनाई? (३) सृष्टि कैसे बनी? (४) सृष्टि बनाने का प्रयोजन क्या था? यह प्रश्न थे जिन्होंने मुझको जीवन भर, खोज में रखा। आज जो शब्द पढ़ा गया उसमें सतगुरु से स्तुति की गई है। उसमें लिखा है :-

जीवों को चिता के किया मग में

इसके अनुसार राधास्वामी मत के गुरु जीवों को चिताकर रास्ते पर डाल देते हैं। मैं इन प्रश्नों को हल करने के लिए इस रास्ते पर आया था अब अपनी आत्मा से पूछता हूँ कि क्या तुझको पता लग गया कि इस सृष्टि को बनाने वाला कौन है और क्यों बनाई है? किस ने बनाई है और इसके बनाने का प्रयोजन क्या है?

मैंने प्रण किया था कि जो कुछ जीवन का अनुभव होगा, वह कह जाऊँगा मगर यह दावा नहीं है कि जो कुछ मेरा अनुभव है यही ठीक है। चूँकि मेरा अनुभव राधास्वामी दयाल की बाणी से मेल खाता है इसलिये विवश हूँ कि राधास्वामी दयाल की बाणी को सच मानूं। जहां मैं पहुँचा हूँ वहां का जो अनुभव है उसका स्वामी जी ने या कबीर ने या दाता दयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी ने केवल संकेत किया, खोला नहीं।

अब पहिला- प्रश्न है कि इस सृष्टि का बनाने वाला कौन है?

मेरा अनुभव मुझे विवश करता है कि मैं मानूं कि इस सृष्टि का बनाने वीला कोई ऐसा पुरुष है जिसका देह भी है, मन भी है और उसका आत्मा भी है। उसने अपने संकल्प या वासना से बनाया है। इसका प्रमाण मेरे पास केवल यह है कि जो सत्संगी अपनी वासना से मुझको जागृत में, स्वप्न में या समाधि

में बना लेते हैं अर्थात् मेरा स्वरूप उनके अन्तर प्रगट हो जाता है या जागृत में सामने खड़ा बातें करता है, किसी को रोग की दवा बताता है, किसी का पत्थर हटाकर दबे हुए को निकाल जाता है, किसी को परीक्षा के पर्चे हल करा देता है, किसी को मरते समय साथ ले जाता है। चूंकि इन घटनाओं की मुझे कोई जानकारी नहीं होती कि उनको किसने और किस समय ऐसी सहायता की, तो मुझे विश्वास हो गया कि सृष्टि का बनाने वाला कोई महान पुरुष है जिसके संकल्प या वासना से सृष्टि बनती है। यह प्रमाण है मेरे पास। दाता दयाल (महर्षि शिव) ने इस बात को जताने के लिये कि यह सृष्टि किसने बनाई है मुझे रास्ते में डाला। लिखा है :-

जीवों को चिता के किया मग में।

इस रास्ते को बताने के लिये यह गुरु पदवी दे दी।

अब मैं सोचता हूँ कि वर्तमान विज्ञान (साईन्स) जैसा कि हमारे

डी०ए०वी० कालिज के रिटायर्ड प्रिंसिपल पं० दिलाराम जी नें इस मासिक सत्संग पर मानवता मन्दिर में इतवार के दिन कहा था कि साईन्स ने यह सिद्ध किया है कि हस्ती (आस्तित्व) भी एक एनर्जी (शक्ति) है। उसमें भी लगभग 31 प्रकार की शक्तियां हैं। यहां तक साईन्स वाले पहुँचे हैं। अब हर एक विज्ञानवेता इस युग में जब किसी वस्तु की खोज करता है वह बाह्य स्थूल पदार्थ को सामने रखकर उसकी खोज करता है। साईन्स इस शक्ति तक पहुँची है जो स्थूल जगत को बताती है। स्थूल जगत में सूर्य, चन्द्रमा, तारागण जो आंख से देखे जा सकते हैं उनकी भी खोज वर्तमान विज्ञान कर सकता है। इस स्थूल अर्थात् विराट पुरुष या उस खुदा की जो शारीरिक दशा है उसका हल तो साईन्स वालों के पास है मगर जो वस्तु वासना अर्थात् जो इस स्थूल रचना को बनाती है उसका साईन्स वालों को या किसी और को पता तब होगा जब मनुष्य उस वासना

या संकल्प या सूक्ष्म प्रकृति, जिसको संत अक्षर कहते हैं, अपने दिमाग की लेबोरेटरी में लाकर विश्लेषण [Analisys] करेगा अन्यथा मनुष्य उस असली कर्ता को नहीं जान सकता। यह खोज केवल संतों ने की है। कैसे? अपने शरीर की जो प्रकृति है और उस प्रकृति की जो आदि एनर्जी [Energy] है जिसका नाम संतों ने त्रिकुटी रखा हुआ है और शास्त्र जिसे ओ३म् कहते हैं या प्रणव कहते हैं, जब तक उससे परे कोई मनुष्य नहीं जायेगा उसको उस खुदा या ईश्वर या बनाने वाले का ज्ञान नहीं हो सकता। मुझे तो निश्चय हो गया कि सृष्टि का बनाने वाला है। कौन है? क्या है? कैसे उसने दुनिया बनाई? इसका निश्चय कैसे हुआ?

अजपा जाप करते हुये स्थूल प्रकृति का बोध [Feeling] भूल गया। फिर क्या होता है? मन के संकल्प विकल्प उठते हैं, स्वप्न में भी, जागृत में भी और समाधि में भी। अब मैं

सोचता हूँ कि वह संकल्प विकल्प क्यों उठते हैं। जहां तक मेरा अनुभव है वह बताता है कि जिस प्रकार के संस्कार, रेडीयेशन या बाह्य प्रभावों से दिमाग के ऊपर पड़े हुये होते हैं उन के चित्र [Impressions] कोई बात सुनने से, पढ़ने से, छूने से अंकित हो जाते हैं। वह फिल्म की तरह जो सिनेमा में प्रकाश के सामने आती है या फोकस के सामने आती हैं, हमको स्क्रीन (पर्दे) पर हर एक वस्तु दिखाई देती है और आवाज भी सुनते हैं, इसी तरह जितने विचार हमारे मन के अंदर उत्पन्न होते हैं वह वास्तव में असली वस्तु नहीं है, यह छाया है। इस बात का ज्ञान मुझको गुरु पद पर आने से हुआ।

दूसरे आदमी सजैशन [Suggestion] लेते हैं। ख्याल और संस्कार ले जाते हैं वह ख्याल और सजैशन उनके दिमाग में रूप बनाता है। जो व्यक्ति अपने अज्ञान से या न जानने से उन संस्कारों, ख्याल और उन रुपों को सत्य मानता है उसका

मानसिक जगत उसके अनुसार हो जाता है और उसी के अनुसार वह दुख सुख, सफलता असफलता देखता है। हिन्दू शास्त्र इसको माया कहते हैं। जो आदमी इन दृष्यों को सत मानता है वह माया ग्रस्त होकर इस संसार में दुख सुख के झमेले का दृश्य देखता है। मनुष्य की अपनी माया उसकी अपनी दुनिया है। जिसने या जिस महापुरुष ने यह दुनिया बनाई है अपनी माया से बनाई है। चूंकि मनुष्य स्वप्न की तरह अपने संकल्प की दुनिया को सत मानते हैं दुख सुख भोगते हैं।

वह जो इस सृष्टि का बनाने वाला है संत जिसको काल पुरुष कहते हैं और सर्वसाधारण लोग उसे खुदा या ईश्वर कहते हैं उसको भी अपनी माया से वैसे ही सुख दुख होता है जैसे हमको होता है। इसके प्रमाण में हिन्दू शास्त्रों का कथन है। यदि वह दुख सुख को महसूस न करता तो श्रीराम, श्रीकृष्ण या दूसरे अवतार दुनिया में क्यों आते। अवतार तभी होता है जब दुनिया

में अधर्म होता है। कृष्ण गीता में कहते हैं कि जब जब धर्म की हानि होती है मैं अवतार लेता हूँ। तो धर्म की हानि का दुख उन्हें भी हुआ तब ही तो वह आये। संत इसको काल चक्र कहते हैं। नीचे के शब्द में दाता दयाल (महर्षि शिव) मुझे समझाते हैं :

हिंडोला

काल चक्र है सहज हिंडोला झूले अचरज न्यारा।
सब कोई झूले झूला चढ़कर, काल झुलावन हारा॥
चन्द्र सूर दोऊ गगन में झूलें, झूलें नव लख तारे।
जीव जन्तु पृथ्वी में झूले नर पशु सकल विचारे॥
राजा झूला रानी झूली और प्रजा समुदाई।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर झूले, झूली सब दुनियाई॥
लक्ष्मी झूली दुर्गा झूली गायत्री महारानी।
देवा झूले देवी झूली, नभ थल अग्नि पानी॥
काल भी झूला अपने झूला, सृष्टि प्रलय कर प्यारे।
वह भी बचा न चक्र से अपने, झूला झूले सारे॥

चढ़ी पेंग तब ऊंचे आये उतरी नीचे ठहरे।
कभी मिले तो जमघट देखी, बिछुड़ के हो गये न्यारे॥
एक दिशा में नित जो बरते, कोई नजर न आता।
पीर पैगम्बर कुतुब औलिया, ऋषि मुनि बन नहिं पाया॥
पानी भया भाप की सूरत, धाया गिरि कैलासा।
बरफ बना धारा बह निकली, नीचे किया निवासा॥
नीचे भी रहने नहीं पाया, फ़िर ऊंचे की आशा।
हम तो देखें खुली दृष्टि से, अचरज अजब तमाशा॥
लकड़ी जलकर कोयला हो गई, कोयला राख और माटी।
माटी माटी में नहिं ठहरी, बनी काठ और लाठी॥
विष्ठा अन्न अन्न भया विष्ठा, सोई सब कोई खावे।
यह प्रपंच है अद्भुत न्यारा, बिरला कोई लख पावे॥
जागृत स्वप्न सुषुप्ति लीला, कभी ऐसी कभी वैसी।
यह सब काल बली की माया, कभी जैसी कभी तैसी॥
पंडित कभी अनाड़ी होते, कभी अज्ञानी ज्ञानी।
कभी जड़ मिलजुल चेतन ठहरे, कभी चेतन जड़ जानी॥

समुझत बने कथन नहि आवे, मन बानी अलसानी।
कोई कैसे समझावे किसको, समझे कोई गुरु ज्ञानी॥
एक दशा में कोई न बरते, कभी बैठा कभी दौड़ा।
कभी थका कभी सोया लेटा, काल चक्र अति चौड़ा॥
झूले की है विचित्र कहानी, कथा वार्ता न्यारी।
नर को हम समझावन आये, सुने न बात हमारी॥
दुःख सुख दुःख सुख द्वन्द पसारा, द्वन्द से प्यार बढ़ाया।
द्वन्द भाव से जगत रचाया, द्वन्द के फांस फँसाया।
मन बुद्धी और चित हंकारा, सो झूले की रसरी।
दोलड़ त्रयलड़ चौलड़ बन आई, जीव निबल को जकड़ी॥
जकड़े माया के फंन्दे में, रोवे और चिल्लाये।
शोर मचाये बहु चिल्लाये, छूटन बिधि नहि पाये॥
तब दयाल को दाया लागी, संत रुप धर आया।
राधास्वामी अचल मुकामी, शालिग्राम कहाया॥
नर शरीर में प्रगटा आकर, जीवन बहुत चेताया।
जो कोई जीव शरन में आया, अपना कर अपनाया॥

सुन फकीर यह गुरु उपदेशा, मैं भी तुझे सुनाऊँ।
बात जो मेरी मन से माने, इस झूले से बचाऊँ॥
खेल खिलाऊं सुगम सहेला, सुरत शब्द मत गाऊँ।
काल हिंडोले से तू बाचे, विधि विचित्र समझाऊं॥
कर सत्संग विवेक से गुरु का, गुरु दयाल हितकारी।
साधू बनकर साध ले युक्ती, जा झूले के पारी॥
नर शरीर सुर दुर्लभ पाया, सत सङ्गत में आया।
तेरा दांव पड़ा है पूरा, सोच समझ तज माया॥
अब की चूके मौज न ऐसी, त्याग काल की आसा।
आज का साधन आजहि करले, कल को होगा उदासा॥
बार बार नहिं अवसर प्रानी, काल महा दुखदाई।
जो कोई करे काल की आसा, सो पीछे पछिताई॥
राधास्वामी दया के सागर, तेरे कारन आये।
सीस चरन में उनके झुकाकर अपना काज बनाये॥
राधास्वामी राधास्वामी, राधास्वामी गाना।
मन बच कर्म से भक्ति कमाना, झूले बाहर आना॥

यह प्रमाण है कि जिसने इस सृष्टि को रचा है। वह कौन है? वह वह एनरजी [Energy] या शक्ति है जिसके अन्तर से संकल्प पैदा होता है या इच्छा या वासना पैदा होती है। इसका प्रमाण मुझको अपने अनुभव से है और कुछ सत्संगियों के अनुभव ने विश्वास दिलाया कि वह जो दुनिया को पैदा करने वाला है उसका देह भी है मन भी है और आत्मा भी है। स्थूल मादा (जड़ पदार्थ) का नाम संतों ने क्षर रखा है। सूक्ष्म पदार्थ या तत्व का नाम अक्षर और कारण माद्दा का नाम जो रचना करता हैं निःक्षर रखा हुआ है। मैं निकला था यह ज्ञात करने कि दुनिया को उत्पन्न करने वाला कौन है। दाता दयाल (महर्षि शिव) ने इस रहस्य को हल करने को नाम दिया था। सुमिरन, ध्यान और भजन और साथ ही सत्पुरुषों का सत्संग सुनने को कहा था। लेकिन जब सत्पुरुष मेरे लिये आप सत्संगी सिद्ध हुये क्योंकि आपने अपना अनुभव सच्चाई के साथ मुझे बताया और आपकी

सच्चाई से मुझे ज्ञान हो गया तो अब मैं किस सत्पुरुष की खोज करूं। यह महात्मा लोग मेरे लिये सत्पुरुष सिद्ध नहीं हुये क्योंकि किसी महात्मा ने आज तक बात स्पष्ट खोलकर नहीं कही। इसलिये मैं निर्भय होकर कह जाता हूँ कि आज दिन तक जितने गुरु हुये उन्होंने सैन बैन से काम लिया। सत्यता या यथार्थता का डंका नहीं बजाया। यदि वह सत्पुरुष होंगे तो अपने आपके लिये होंगे। दुनिया को उनके सत्पुरुष होने का कोई विशेष लाभ नहीं पहुँचा मगर दुनिया में मेरा जैसा खब्त भी किसी को नहीं आया। कौन ढूंढने निकला कि दुनियां को बनाने वाला कौन है? क्यों बनाई और इसके बनाने का उद्देश्य क्या है? चूंकि मुझे ज्ञान हो गया कि मैं समाधि में, जागृत में जिन अभ्यासिओं या प्रेमियों पर प्रत्यक्ष या अन्तर में प्रगट होता हूं और मैं नहीं होता तो उनके अपने दिमाग पर जिस तरह के नक्शा (चित्र) पड़े हुये होते हैं उन्हीं को अपने अन्तर देखते हैं। मैं उस खुदा या ईश्वर को

ढूंढने को विवश हो गया, जिसने दुनिया बनाई है। मैं अपने अन्तर बैठा, त्रिकुटी से ऊपर गया, जिसके ऊपर अक्स पढ़े थे अर्थात् चित्रकूट। तो उससे या त्रिकुटी से ऊंचे गया तो रास्ते में जो अक्स (चित्र) आते थे उनको पूर्ण रूप से समाप्त करने तक कि वह अक्स न रहें आगे मेजिलें (श्रेणियां या अवस्थायें) हैं- एक सुन्न की, दूसरी महासुन्न की। वह जो चित्रकूट का स्थान था, जिस पर नक्श (चित्र) पड़ते थे वे मुझ को सिद्ध हो गये कि वह नक्श (चित्र) असली नहीं हैं नकली हैं। फिर उससे आगे जाने को मुझे दसवें द्वार (निर्विकल्प समाधि की अवस्था) में जाना पड़ा।

उस दसवें द्वार में जाकर जो व्यक्ति चेतनता नहीं रखता अर्थात् उसको उस ईश्वर के मिलने की चाह नहीं होती वह उसी में फंस कर तल्लीन (मजजूव) हो जाता है। चूंकि वह मजजूब हो जाता है तो फिर ऐसे जिज्ञासु को यदि सच्चे मालिक से मिलने की सच्ची खोज है तो उसको ऐसे सतगुरु की आवश्यकता है जो

उसको सीधे रास्ते में डाल दे। उसी गुरु की स्तुति शुरु में की गई है।

तेरी स्तुति हित चित से गाऊँ, धन-धन धन-धन राधास्वामी।

इसलिये बाहरी गुरु की आवश्यकता है। वह क्या करता है।

गुरु रूप में प्रगट हुआ जग में, जीवों को
चिता के किया मग में।

उस गुरु की स्तुति की जाती है जो जीव को यह जताता है कि तेरी यह महासुन्न की अवस्था अक्षर है, सूक्ष्म प्रकृति है। केवल इस महासुन्न की अवस्था में पहुंचने से तुमको उस खुदा या ईश्वर का ही दर्शन नहीं हो सकता। वह इससे आगे है।

कर्ता पुरुष और सृष्टि की रचना

दुनिया को देखकर मनुष्य के अन्तर विचार होता है कि वह मालिक जिसने दुनिया बनाई है कौन है, क्या है, क्यों बनाई, कैसे बनाई? दुनिया के बनाने का उद्देश्य क्या है? बहुत से लोग यह प्रश्न पैदा नहीं करते। उनके अन्तर स्वाभाविक एक विश्वास आ जाता है और उस विश्वास के सहारे वह अपनी बुद्धि के अनुसार उसकी स्तुति करते हैं, उससे प्रेम करते रहते हैं, गुणगान करते रहते हैं। उनमें से मैं भी एक था। भिन्न-भिन्न धर्म सम्प्रदायों की विचारधारायें हैं कि वह ऐसा है, अन्तर में दर्शन देता है आदि-आदि के संस्कार मिले थे। चित्त उसका दर्शन करना चाहता था कि वह है क्या? कौन है? क्यों उस ने दुनिया बनाई? क्यों? क्योंकि यहां मुझे सुख दुख का भान हुआ। चूंकि

दुख सुख उठाया तो उनसे निवृत्ति का ख्याल आया कि हम को क्यों बनाया गया है। केवल दुख सुख भोगने को? इसलिये मुझे कर्मभोग वश या मौज आधीन उसको ढूंढने की उत्कण्ठा हुई। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार कि वह मानव रूप में आया करता है, तो मुझे भी चाह हुई कि मैं भी उसको मानव रूप में देखूं।

एक दृश्य सन् 1905 ई० का था जो मुझे दाता दयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी के चरणों में ले गया। उनसे अत्यन्त प्रेम किया। उन्होंने ईश्वर के असली रूप को जानने के लिये यह नाम दान दिया था और यह गुरुयायी दी थी। कहा था कि इस गुरुयायी के अनुभव से तुमको उस मालिक के दर्शन हो जायेंगे और तुमको तुम्हारे प्रश्नों के कि दुनियाँ क्यों बनाई, कैसे बनाई, क्या उद्देश्य है, का उत्तर मिल जायेगा।

कल मैंने कहा था कि केवल एक ख्याल ने कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता, मुझे यह विश्वास करवा दिया कि मेरे अन्तर

जितने रूप रंग तथा विचार आते थे वह उन बाह्य प्रभावों के कारण थे जो देखने, सुनने, छूने और पढ़ने से मेरे चित्रकूट पर पड़े थे। इन को छोड़ा अर्थात् दसवां द्वार आ गया या निर्विकल्प समाधि आ गई। फिर आगे प्रकाश देखा। वह जो प्रकाश है मेरे अन्तर में मेरा आत्मा है। चूँकि जो ब्रह्माण्ड में है वह पिन्ड में है। इस तरह से अनुभव होता है कि इस दुनिया को बनाने वाला कर्ता पुरुष है। उसका आत्मा जिसको हम परमात्मा कहते हैं वह भी प्रकाश रूप का एक चश्मा (स्रोत) है। फिर इस दुनिया का बनाने वाला कौन हुआ। प्रकाश (नूर) का एक महान भण्डार जिसके अन्तर से माया निकलती है विचार निकलते हैं। अब उस प्रकाश का गुण क्या है। उसका गुण है फैलना और रचना करना। फिर जो दुनिया का बनाने वाला है उसने रचना क्यों की? यह उसका स्वाभाविक गुण है। जिस तरह सूर्य का गुण प्रकाश करना, फैलना और रचना करना है, इसी तरह उस ईश्वर

परमात्मा का गुण या स्वभाव है रचना करना। हम चूँकि उसके अंश हैं, हमारे अन्तर भी यही स्वभाव है। हम अपनी मानसिक रचना करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त हमारी प्रकाश रुपी आत्मा के स्वभाविक गुणा के कारण हमारे अन्तर मानसिक जगत में संकल्प होते रहते हैं और हमारे शरीर के अन्तर करोड़ों कीट कीटाणु रक्त में टट्टी में, थूक में, पेशाब में स्वयं पैदा होते रहते हैं, इसी तरह उस दुनिया के पैदा करने वाले की वासना या गुणों से जहाँ यह उत्पत्ति दुनिया की होती है वहाँ उसके स्थूल शरीर में या विराट पुरुष में यह चार खान की रचना होती रहती हैं। अब दो प्रश्नों का उत्तर मुझे मिल गया।

रचना को करने वाला एक महान पुरुष है। उसका आत्मा भी है, उसका मन भी है, जिसको शास्त्र हिरण्यगर्भ, अव्याकृत और विराट कहते हैं। उसका रचना करना स्वाभाविक है। अब क्यों रचना करता है? हमारे अन्तर सन्तान की इच्छा, बढ़ने की

इच्छा, उन्नति की इच्छा व अन्य प्रकार की आशायें स्वाभाविक उत्पन्न होती हैं। तुम न भी चाहो तो किसी न किसी प्रकार की आशा सदा लगी रहती है और इस आशा का पैदा होना आनन्द के लिये है। जिस तरह हम अपनी खुशी के लिये सब काम करते हैं वैसे ही उस परमात्मा ने इस सृष्टि को अपनी खुशी के लिये उत्पन्न किया मगर मैं उस प्रकाश जो हिरण्यगर्भ है उसमें रहता हूं। चूँकि यह ज्ञान हुआ कि इस दुनिया में जो रचना है यह स्थाई नहीं है, यह पैदा होती है और मिट जाती है। जो उपजता है या पैदा होता हैं वह मरता है या विनशता है। अपने शरीर को देखते हैं दुनिया को देखते हैं। फिर ख्याल आता है कि इस संसार में जो हमारी खुशी है जिसके लिये हम रचना करते हैं एक रस नहीं रह सकती। साथ ही वह कौन सी वस्तु हमारे अन्तर है जो इस रचना को, हिरण्यगर्भ, अव्याकृत या विराट पुरुष को अथवा जो अपने शारीरिक भान, मानसिन रचना और प्रकाश को देखती है।

देखने वाली वस्तु दूसरी है तथा जो देखा जाता है वह दूसरी है। जो वस्तु इस रचना को देखती है या साक्षी है वह हम हैं। उसका नाम संतों ने सुरत रखा हुआ है। इस परिवर्तनशील संसार में जब मनुष्य अनुभव कर लेता है कि यह संसार परिवर्तनशील है और जो आनन्द और सुख हम शारीरिक अहसास (भान) मानसिक विचारों और प्रकाश के आनन्द से लेते हैं उनमें थिरताई नहीं है, अर्थात् बदलते रहते हैं तो फिर जब सुरत इससे उकता जाती है तो वह किसी ऐसी वस्तु की खोज करती है जहां सर्वदा के लिये सुख हो और परिवर्तन न आये। यहाँ इस ईश्वर की सृष्टि में या कर्त्ता पुरुष की दुनिया में स्थाई सुख नहीं है। इसलिये हम हमारी सुरत उस वस्तु की खोज करती है जहाँ चिरस्थायी सुख है। इस से सिद्ध हुआ कि रचना करने वाला जो ईश्वर है इसके खेल का आनन्द लेने वाली कोई शक्ति है जिसका नाम सुरत है।

राधास्वामी मत में उत्पत्ति और प्रलय का वर्णन है। राधास्वामी मत में इस अनुभव के आधार पर इस ईश्वर की रचना का जो ज्ञान है उसको वेदों का ज्ञान कहा है। उन्होंने यह समझकर कि रचना करने वाले का जितना कर्म है यह नित्य सुखदाई नहीं है इसलिये इस वेद ज्ञान को अधूरा कह कर उन सुरतों के लिये जो इस त्रिगुणात्मक जगत से सदा के लिये बचना चाहती हैं उनको मार्ग बताया है।

ईश्वर का रुप

विनती

बन्दनम् सत ज्ञान दाता, बन्दनम् सत ज्ञानमय।
बन्दनम् निर्वान दाता, बन्दनम् निर्वान मय॥
भक्ति मुक्ती योग युक्ती, आपके आधीन सब।
आप ही हैं सिन्धु सद्गति, जीव जन्तु मीन सब॥
आप गुरु सतगुरु दया और प्रेम के भण्डार हैं।
आप कर्ता धर्ता हैं, करतार जगदाधार हैं।
ऋद्धि सिद्धी शक्ति नौ निधि, हैं चरण में आपके।
बच गया भव दुख से जो, आया शरन में आपके॥
भक्ती दीजै नाम की, सतनाम में विश्राम दे।
राधास्वामी अपना कीजै, राधास्वामी धाम दे॥

इस शब्द में गुरु से प्रार्थना की गई है कि 'राधास्वामी धाम दे'। मैं बचपन में उस ईश्वर को देखना चाहता था जिसने दुनिया बनाई है। दाता दयाल या राधास्वामी मत वाले या संतजन ईश्वर की भक्ति नहीं बताते किन्तु नाम की भक्ति बताते हैं। यह नई बात है। ईश्वर की पूजा या बनाने वाले की पूजा, उसकी सेवा उसका प्रेम सब धर्मावलम्बी बताते हैं। इस भावना वश कि भगवान को मिलना है दातादयाल (महर्षि शिव) की शरण में गया था। स्वयं नहीं गया था किन्तु घसीट कर लाया गया था। संतों ने नाम की भक्ति कह दी और नाम भी क्या? वर्णात्मक नाम नहीं जो हम मुँह से लेते हैं जैसे राम-राम, जै श्री कृष्ण, वाह गुरु राधास्वामी या निज नाम। यह नाम नहीं किन्तु नाम वह है जो अन्तर में धुन होती है- अनहद बाणी है या शब्द ब्रह्म है। ऐ दुनिया वालो! मैंने तो अपना जीवन इस नाम की प्राप्ति के लिये खो दिया। इसलिये कि मैं विवश था। देखना

चाहता था कि सच्चाई क्या है। अब कहता हूँ कि जब तक कोई आदमी पहिले ईश्वर के दर्शन नहीं करता तथा इस कर्ता पुरुष को नहीं जानता जिसने दुनिया बनाई है वह नाम को प्राप्त नहीं कर सकता। यही बात स्वामी जी ने कही है।

वेद बचन त्रय गुन विषय, तीन लोक की नीत।
चौथे पद के हाल को, वह क्या जाने मीत॥

ईश्वर जो रचना करने वाला है जिसे मैंने बड़ा पुरुष कहा है वह क्या करता है। वह त्रिगुणात्मक जगत को रचता है। जब तक किसी को इसका ज्ञान नहीं कि वह ईश्वर या परमात्मा क्या है, कैसे रचना करता है, वह ऊपर नहीं जा सकता। इसलिये सबसे पहिले इस सृष्टि के पैदा करने वाले को जानना पहिचानना और इसके दर्शन करना अनिवार्य है।

हर एक धर्माबलम्बी ने अपने बड़प्पन को सिद्ध करने के लिये दूसरों का खंडन गलत ढंग से किया है। पिछला समय

गया। अब नया युग है। इन विभिन्न प्रकार की वर्णन शैलियों ने भारत वर्ष के निवासियों को धार्मिक रूप से बांट दिया है। ईश्वर को जिसने दुनिया बनाई है मैंने कैसे जाना, कैसे उसके दर्शन किये, उसका वर्णन मैंने पहिले कर दिया है। उसके दर्शन मुझको सतगुरु स्वरुप सत्संगियों के द्वारा हुये। देखो! कमालपुर (जि० कानपुर) वाली माई है। इसको छोटी आयु से गीता, भागवत, रामायण आदि के संस्कारों से किसी वस्तु की खोज थी। इस खोज के सिलसिले में व्यास के संत्संगों में जहां महात्मा वृजलाल सत्संग कराता था जाती और सत्संग सुनती। इस माई के अन्तर बाबा जैमल सिंह जी और बाबा सावनसिंह जी के रूप प्रगट हुए। उन्होंने कहा व्यास आजा, तुझे नाम मिल जायेगा। यह माई व्यास गई। वहाँ जो बाबा जी के अगुये थे उन्होंने इस माई को धक्के मारे और यह बाबा जी तक न पहुँच सकी और न नाम मिला। यह कहती है कि मैं सोचती थी कि जब मुझको

बाबा जी ने कहा है कि तू व्यास आजा और यहां कोई पूछता नहीं फिर बात क्या है! यह माई वापिस चली आई। मैं माडल टाउन होशियारपुर में सत्संग करा रहा था तो मेरे मुंह से निकल गया कि किसी ने कुछ मांगना हो तो माँग ले। इस माई ने कहा बाबा जी नाम दान दे दो। मैंने कहा मैं तो किसी को दूसरे गुरुओं की तरह नाम दान देता नहीं। लेकिन बेटी! राधास्वामी नाम का सुरमिरन किया कर और मेरा ध्यान किया कर। इस माई के अन्तर मेरा नूरानी (प्रकाशमय) रूप प्रगट हुआ करता था जो इसके अन्तर में चढ़ाई कराता था। उस माई ने मुझसे पूछा कि क्या वह प्रकाशमय और सुन्दर रूप जो अन्तर में दिखाई देता है वह और है, और यह बाहरी रूप और है मैंने कहा। माई! वह जो रूप तेरे अन्तर बाबा फकीर का प्रकट होता है वह तेरा अपना आत्मा है।

अब तुम सोचो, इसके अन्तर बाबा जैमलसिंह और बाबा सावन सिंह जी प्रगट हुये और बाबा चरनसिंह जो इस समय

गुरु हैं वह भी उसके ध्यान में प्रगट हुए। यदि सचमुच बाबा जैमलसिंह और बाबा सावनसिंह होते तो उसे व्यास बुलाकर नाम क्यों न दिया। इससे सिद्ध हुआ कि यह मनुष्य के मन का खेल है। वह कुल बाह्य संस्कारों और प्रभावों का खेल है जो सुनकर, पढ़कर हमारे दिमाग पर पड़ते हैं। यह सारा संसार जो ईश्वर का बनाया हुआ है यह क्या है? रेडीयेशन, संस्कार, विचार। फिर ईश्वर का क्या रुप है? माया और संस्कार। फिर ईश्वर क्या हुआ? यह दुनिया में जितने खेल हैं अर्थात् संकल्प की दुनिया और तुम्हारे अन्तर में जो प्रकाश है जो इस सूक्ष्म और स्थूल प्रकृति के बनाने वाला है यह कुल का कुल संसार ईश्वर का रुप है। जल, थल, आकाश, वनस्पति, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण यह सब ही तो ईश्वर का रुप हैं, दाता दयाल महर्षि शिव का शब्द है :-

जहां आँख खोली वहीं तुझको पाया।

कहीं जोति था तु कहीं था तू छाया॥
कमल है कमल का बना रूप तुझ से।
हुआ भौरा और बास तू लेने आया॥
पवन है आकाश आग मिट्टी है पानी।
तू सब कुछ है और सब में रहता है छाया॥
कहीं होके प्रकट दिया सबको दर्शन।
कहीं छुप गया छुपके छबी को छुपाया॥
छुपा आग के रूप चकमक में बैठा।
हरी मेंहदी में लाली का रंग लाया॥
जिधर देखता हूँ तुझे देखता हूँ।
मेरी दृष्टि में आप तू ब्रह्म माया॥
दया राधास्वामी की मुझ पर हुई अब।
परम सन्त अवतार धर कर चिताया॥

यह जितना त्रिगुणात्मक जगत है यह सब ईश्वर का रूप है। मुझको ईश्वर के रूप का पता लग गया मगर यह तो परिवर्तनशील है। इस रूप के जानने के पश्चात् भी क्या मुझको

शान्ति मिली? क्या इस ज्ञान के हो जाने से कि हर एक वस्तु ईश्वर का ही रूप है क्या मुझको शान्ति मिली? मुझे नहीं, किन्तु हर एक मनुष्य सोचे कि क्या उसे शान्ति मिली। जिस ईश्वर के रूप में उस रूप को ईश्वर मानकर कोई अपनी सुरत को ठहरायेगा, चूँकि वह वस्तु जिसमें ईश्वर समझकर, उसने अपनी सुरत लगाई है, वह वस्तु बदल जाती है, इसलिये शान्ति नहीं मिलती। जिस स्थान पर शान्ति मिलती है उस स्थान का नाम है चौथा पद। इससे सिद्ध हुआ कि ईश्वर भक्ति से शान्ति नहीं मिल सकती क्योंकि ईश्वर स्थूल, व सूक्ष्म पदार्थ और कारण प्रकृति के समस्त खेलों का नाम है। ईश्वर की भक्ति से आनन्द, ऋद्धि, सिद्धि, अस्थाई सहारा तथा शक्ति मिल सकती है परम शान्ति, निर्वाण या मोक्ष नहीं मिल सकती।

ईश्वर के दर्शन भी बाहरी गुरु कराता है। मेरे लिये ईश्वर का दर्शन कराने वाले मेरे सत्संगी हुये। जो बात दाता दयाल

मुझको समझाते थे और मैं समझ न सकता था तो उन्होंने समझाने के लिये युक्ति निकाली। उनका अहसान है। अब दर्शन हो गये। मगर ईश्वर के दर्शन से शान्ति नहीं मिली क्योंकि सब रचना परिवर्तनशील है। ईश्वर का रूप बता दिया गया। स्थूल-सूक्ष्म और कारण प्रकृति। स्थूल प्रकृति तुम जानते हो- धन सम्पति, देह, पुत्र कलत्र आदि। संकल्प विकल्प, मान, बड़ाई, भलाई बुराई के विचार सब सूक्ष्म प्रकृति है। प्रकाश कारण प्रकृति है। दूसरे शब्दों में हिरण्यगर्भ, अव्याकृत और विराट। तुम सुरत को प्रकृति की किसी वस्तु के साथ जोड़ो। चूँकि यह परिवर्तनशील है तुम्हारी सुरत यहाँ से अपने अनुभव से या इस प्रकृति के परिवर्तन के साथ वहां से हट जायेगी। इसलिये ईश्वर की रचना में, इसमें जिसने इस दुनिया को पैदा किया है इसे पैदा करने वाले या उसकी रचना से प्रेम करने वाले को या उसकी

पूजा करने वाले को अविचल या स्थाई शान्ति, स्थाई सुख या अमर पद कभी नहीं मिल सकता।

अब स्वामी जी कहते हैं :-

अब उत्पत्ति वर्णन करूं जस संतन मन माहीं।
पुनि परलय भी कहत हूँ, ताते भरम नसाहीं॥

स्वामी जी परिवर्तनशील जगत को सिद्ध करते हैं कि यह उत्पन्न होता है और नाश होता है। ईश्वर भी बनता है और बिगड़ता है। शास्त्र भी प्रलय को मानते हैं। यह नहीं कि केवल राधास्वामी मत ही मानता हो। यह जितने ईश्वर या खुदा की भक्ति करने वाले हैं यह भेद के जानकार नहीं हैं। भावुक हैं। ईश्वर की भक्ति के परिणाम को नहीं देखते। (हां, आनन्द या ऋद्धि सिद्धि शक्ति तक ही सीमित है तो दूसरी बात है।) दूसरे शब्दों में अपनी अवस्था या रहनी का अनुभव नहीं करते। इसलिये गुरु की महिमा ईश्वर भक्ति से अधिक है क्योंकि ईश्वर भक्ति से अटल

शान्ति या स्थाई सुख प्राप्ति नहीं कर सकते। सम्प्रदायवादी कट्टर और पक्षपाती हैं। वह सच्चाई को अपने अज्ञान और टेक के कारण सुनने की तत्पर नहीं हैं। इसलिये संत जो होते हैं यह पब्लिक के प्लेटफार्म पर नहीं आते, क्योंकि सर्व साधारण की बुद्धियां इस योग्य नहीं होती। कुछ अपने अज्ञान के कारण और कुछ पक्षपात के कारण। मैंने सतगुरु वक्त की हैसियत में वर्णन शैली को बदल दिया ताकि इस वर्णन शैली से लोगों का पक्षपात दूर हो और उनको सच्चा रास्ता मिले और जिस धार्मिक उन्मत्तता वश मानव जाति बंट गई है, उसमें एकता आये। यह है मेरा भाव शिक्षा को बदल देने का। दाता दयाल ने आज्ञा दी थी कि फकीर! चोला छोड़ने से पहिले शिक्षा को बदल जाना क्योंकि जमाना बदल जायेगा अतः संसार पथ-भ्रष्ट न हो जाये।

सबकी आदि कहूँ अब स्वामी।
अकह अगाध अपार अनामी॥

तिन से अगम पुरुष प्रगटाये।
अगम लोक में आसन लाये॥
अलख पुरुष को हुआ उजाला।
अलख लोक उन जीव को डाला॥
फिर सतनाम परसा सत सोई।
सत सत रचना जहां होई॥

यहाँ स्वामी जी ने रोचकता से सच्चाई का वर्णन किया है। मुझे इस बाणी का विश्वास कैसे आया? जब कमालपुर वाली माई, कृषक या दूसरे सत्सँगियों ने मुझे बताया कि मेरा प्रकाशमय रूप उनके अन्तर प्रगट होकर उनकी सुरत को ऊँची श्रेणियों (अवस्थाओं) पर ले गया मगर मैं नहीं था, तो मैं विवश हो गया उस अवस्था को प्राप्त करने के लिये जहाँ कोई रूप नहीं होता। जब इन रूपों को छोड़ देता हूँ तो आगे केवल शब्द रहता है। वही नाम है। मेरी सुरत शब्द रूप होती हुई उस शब्द की, चेतनता में जाती है। जब तक उस चेतनता की दशा की

अभिव्यक्ति होती है मैं उसको सत पद कहता हूँ और और जब खोज करता हुआ उस चेतनता में लय हो जाता हूँ तो उस लय होने या शब्द में प्रवेश होने की लयपने की या चेतनता की महवियत की, जो अवस्थायें हैं उनका नाम अलख और अगम है जब वहां जाता हूँ तो मेरे व्यक्तित्व की चेतनता जो है वह समाप्त हो जाती है। उसको कहते हैं अंश का कुल से मिलाप होना अथवा बून्द का समुद्र में मिल जाना या बुलबुले का मिटकर पानी हो जाना। जब यह अवस्था आती है तो चूँकि अस्तित्व है वह अजर और अमर है उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। इसलिये असली मालिक आधार है जो अजर और अमर है जिसमें नाश होने का कोई नाम नहीं। शेष जितने खेल हैं ईश्वर, परमेश्वर, सोहं या कारण, सूक्ष्म और स्थूल के यह सब उत्पत्ति और प्रलय के नियम के अन्तर्गत हैं।

फिर सत नाम पुरुष सत सोई।

सत सत रचना जहां पर होई॥
सत्त लोक वह धाम सुहेला।
हंस करें जहं अचरज अकेला॥

यदि मैं वहाँ पहुँच जाऊँ तो वहां का आनन्द लूंगा। तुम पहुँच जाओ। तुम अलग आनन्द लोगे। इस अवस्था में जितने हंस हैं या जितने इस रास्ते के चलने वाले हैं सब इस अवस्था में परमानन्द को प्राप्त करते हैं जिसमे कोई परिवर्तनशील खेल नहीं होता। शरीर के त्याग के बाद कहां जाऊंगा मैं नहीं जानता। इस समय जितना अनुभव हुआ वह शरीर में रहते हुए ही तो हुआ। स्थायी रूप से शरीर त्याग के बाद मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं बता सकूं कि शरीर से निकलने के बाद कोई और सत लोक है जिसमें हंस होते हैं या नहीं होते हैं। अनुमान से मानता हूँ कि वह देश है और उससे हम सब सुरतें यहां आई हैं। यह भी इसलिये मानता हूँ कि मेरा शरीर है। यह जिन तत्वों से बनता है वह तत्व बाहर से

ईश्वर की सृष्टि से प्राकृतिक नियम के अनुसार मेरे शरीर में आकर मेरे शरीर को बना देते हैं।

मेरा मन जो विचार उठाता था यह भी बाहर से सुनकर, छूकर, देखकर अन्दर में प्रगट होते हैं जिस तरह कमालपुर वाली माई के अन्तर बाबा जैमलहिह, बाबा सावनसिंह या बाबा चरनसिंह जी प्रगट हुये या मैं प्रगट होता रहा। वह रूप जो उसके अन्दर बने वह बाहरी संस्कारों ही से तो बने। इसी तरह मेरे अन्तर मेरा प्रकाश रूपी आत्मा है यह भी हिरण्यगर्भ जो परमात्मा है वहां से आया है। इस तरह मानने को मैं विवश हूँ कि मेरी सुरत भी किसी ऐसे देश से आई है जिसे हम सतलोक कहते हैं। इस अनुमान से मानना पड़ता है कि हम सतलोक से आये हुये हैं। पूरा प्रमाण तो तब दे सकूंगा जब शरीर से निकल जाऊँगा और बाहर से बता सकूंगा कि भाई मैं सतलोक में चला गया।

इन लोकन की महिमा भारी।

कहूँ कहां अद्भुत विस्तारी॥

महिमा भारी है ही। जिन्होंने अनुभव किया वह तो महिमा गायेंगे ही। मेरी जुबान से, यदि ध्यान पूर्वक कोई सुनता हो तो बौद्धिक रुप से उसे उसकी महिमा का अंदाजा आना चाहिये। दाता दयाल (महर्षि शिव) की आज्ञा के अनुसार जीवों को गुरु के देश में ले जाने का मेरा कर्तव्य है। मैं सोचता हूँ कि क्या मैं ले जा सकता हूँ? मेरा उत्तर है 'हां'! कैसे ? यह कमाल पुर वाली माई महात्मा बृजलाल के सत्संग में जाया करती थी। वहां बाबा जमलसिंह, बाबा सावन सिंह बाबा हरचरन सिंह के नाम सुना करती थी। वह रूप उसके अन्तर प्रगट हुये। यह ठीक है कि वे नहीं आये मगर जो कुछ उसने सुना उसका दृश्य देखा। ऐसे ही तुम लोग जो मेरे सत्संग में आते हो तो जो आत्मिक और मानसिक धारें संस्कारों के रूप में सुनने से, छूने से, मुझे देखने से तुम में आती हैं यह संस्कार तुम को इस चौथे पद में

ले जायेंगे या नहीं ले जायंगे? तुम सोचो। म० बृजलाल चूँकि बाबा सावन सिंह, बाबा जैमल सिंह से प्रेम करता था; उसके संस्कार से इस माई के अन्तर उनका रुप प्रगट हुआ, यद्यपि उसको व्यास से नाम नहीं मिला था। जो व्यक्ति ऐसे पुरुष का जो स्वयं चौथे पद निज रुप या सत, अलख, अगम में रहता है, सत्संग करते हैं उनमें उस सत्संग कराने वाले की शान्त अवस्था निर्भयता, उदारता जो उसमें हैं उससे तुम कैसे वंचित रह सकते हो, बशर्ते कि तुम में उसकी या उस अवस्था की चाह हो। यदि चाह आज नहीं भी है तो फिर भी उसके संस्कार दिमाग पर रहेंगे और समय पर तुमको उस अवस्था पर पहुँचा देंगे, बशर्ते कि वह संत गद्दी के, धन दौलत, मान बड़ाई या पंथ के ख्याल से सत्संग न कराता हो। यदि उसके हृदय में जीवों के लिये सच्ची हमदर्दी है तो जो व्यक्ति भी किसी संत के सत्संग में जायेगा वह इस गति को प्राप्त किये बिना नहीं रह सकता। मैं साहस पूर्वक

कहता हूँ कि जिन लोगों ने आत्मिक दृष्टि को प्राप्त करने के लिये मेरे सत्संग को ध्यान से सुना यह अपनी आदि अवस्था को अवश्य इसी जीवन में पहुँच जायेंगे। मैं जब ऐसे शब्द कहता हूँ तो सत्यता को सामने रखकर कहता हूँ। सत्संग कराने वाले की नीयत होती हैं। मैं मा० बृजलाल को जानता हूँ। वह व्यास की ओर से होशियारपुर में सत्संग कराया करता था। उसकी नीयत हमेशा यह रहती थी कि लोग व्यास जाकर नाम ले लें। चूँकि उसकी ऐसी इच्छा थी इसलिए कमालपुर वाली माई के अन्तर बाबा जैमल सिह व बाबा सावन सिंह जी का रूप प्रगट हुआ। मेरे सत्संग कराने की नीयत किसी पंथ में शामिल करना नहीं। मेरी नीयत जीवों को परम शान्ति, शारीरिक सुख, रोटी, कपड़ा मन की शान्ति सब कुछ देने की रहती है। चाहता हूँ जीवों को स्वास्थ्य मन और बुद्धि की निर्मलता और परम शान्ति मिले। मैंने

यह नोट किया है कि जो कोई इस नीयत से मेरे साथ लगे हुये हैं उन को लाभ पहुँचा है।

नोट- यह वस्तुयें हर एक व्यक्ति हर जगह से ले सकता है बशर्ते कि दूसरे आदमी में तुम्हारे लिये सच्चा हित हो और वह स्वयं क्रियात्मक (आमिल) हो।

इष्ट पद

सुख का धाम सदा सुख जहाँ।
दुख कलेश का नाम न वहां॥
नई नई लीला सदा अनन्त।
हंस करे नित परम आनन्द॥
अमी अहार भोग परचण्ड।
बीच खंड वह धाम अखण्ड॥
तहां से भंवर गुफा रच डारी।
सोहम पुरुष नाम कह भाषी॥

दाता दयाल (महर्षि शिव) से कितने ही आदमी प्रश्न करते कि दुनिया किसने बनाई? क्यों बनाई? कैसे बनाई? क्या प्रयोजन था? वह उत्तर देते कि इसलिये बनाई कि तुम ढूंढ़ो कि किसने बनाई, क्यों बनाई। मैंने ढूंढ़ा। मैं अपनी आत्मा से पूछता हूँ कि क्या तुमको ईश्वर मिल गया। मित्रो! ढूंढ़ता ढूंढ़ता, मेरा

मार्ग भक्ति का है, चलता रहता हूँ। एक अवस्था आ जाती है जिसमें सब कुछ भूल जाता हूँ। पता नहीं उसको दूसरे महापुरुषों ने क्या कहा है। शायद उनमन या हैरत (आश्चर्य) कहा हो, सर्व व्यापक कहा हो, मैं नहीं जानता। मगर वह है। यदि यह कह दूँ कि वह मेरी अपनी ही अवस्था है जिसे संत या दूसरे महापुरुष अपना आपा कह देते हैं तो हौसला नहीं होता, क्योंकि यदि कोई आदमी या कोई सुरत वहाँ पहुँचकर वह हो गई तो उसमें शक्ति होनी चाहिये कि वह दूसरों के नहीं तो अपने दुखड़े तो दूर कर सके। यह ठीक है कि इस अवस्था में जाकर वह किसी दुख को महसूस नहीं करता मगर जब वहां से नीचे आता है तो वह अपने जीवन के नशेव व फराज (ऊंच-नीच) को बदल नहीं सकता। एक तो मेरा अनुभव दूसरे प्राचीन काल के संतों की घटनायें जैसे राधास्वामी दयाल की पिछली आयु की बीमारी, पलटू साहब का जीवित जलाया जाना, हुजूर बाबा सावनसिंह का कठिन

रोग में फंसना, साहब जी महाराज की दुनिया की आपत्तियाँ, दाता दयाल की धाम का उजड़ना, स्वामी राम कृष्ण परम हंस की कैंसर से मृत्यु, बाबू माधो प्रसाद सिंह का सात वर्ष चारपाई पर पड़े रहना, शम्स तवरेज का मौलाना रुम के लड़के के हाथ से कत्ल होना, क्राइस्ट का सूली पर चढ़ाया जाना, स्वामी दयानन्द को विष दिया जाना, श्री कृष्ण महाराज का भील की गांसी से मारा जाना, मुझे विवश करते हैं कि मैं यह मानू कि कोई भी भक्त से भक्त, संत से संत तथा अवतार इस परिवर्तनशील जगत में होनहार को मेट नहीं सकता। मैंने प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊंगा। कहता हूं कि ईश्वर या मालिक या गुरुका प्रेम केवल सुरत को आनन्दमय रखना अथवा कुदरत की रचना को जानकर दुनिया में रहते हुए इस ज्ञान से कि इसमें दुख सुख अनिवार्य है और होते रहते हैं, एक प्रकार से शान्ति लेना ही हो सकता है।

इस सृष्टि के बनाने वाले ने इसको अपनी वासना से बनाया है। वह वासना क्या है? जिस तरह सूर्य के अन्दर सूर्य की वासना गर्मी देना और प्रकाश फैलाना है, इसी तरह इस संसार के अन्तर वह जो महा पुरुष है जिसका देह विराट है, अव्याकृत उसका मन है और हिरण्यगर्भ उसका आत्मा है, इसके अन्तर में इनके जो जो गुण कर्म स्वभाव हैं वह जितने यह लोक हैं उनकी यह रचना करते रहते हैं। यह जो रचना है मेरी समझ में हमारे या किसी संत के या योगेश्वर या अवतार के अपने वश में नहीं है। यह रचना का खेल है इसको मैं जानता हूँ किन्तु इस पर अधिकार पाना कठिन है।

इस मालिक की खोज में मुझ को क्या सिद्ध हुआ :-

होहि है वही, जो राम रचि राखा।

चूँकि सृष्टि का नियम वासना है इसलिये यदि हम लोग इस दुनिया में भले प्रकार का जीवन बिताना चाहते हैं,

या खुशहाली स्वास्थ्य या मानसिक शान्ति से रहना चाहते हैं, तो हमारा धर्म, कर्म, उपाय प्रयत्न केवल यह हो सकता है कि हम अपनी वासना को ठीक रखें। यही वेद मार्ग है - शिव संकल्पमस्तु। इस विचार को लेकर जो मेरी खोज का परिणाम निकला मैंने अवाज उठाई इन्सान बनो। यदि तुम इस परिवर्तनशील जगत में रहते हुये किसी परम सुख की चाह रखते हो तो अपनी सुरत को वह इष्ट दो जो त्रिलोकी से परे है। उसका इष्ट बनाओ। उससे प्रेम करना, उसकी लगन रखना लाजिमी है ताकि इस परिवर्तनशील जगत में दुख सुख आये तो तुम अपनी सुरत को उस ओर लगा सको। इस से यह होगा कि जब तक तुम्हारी सुरत वहाँ लगी रहेगी तुमको सुख दुख का भान नहीं होगा। मेरा अनुभव है कि यदि अन्त समय में उस चौथे पद पर या परम शान्ति या अकाल पुरुष का ध्यान करते हुये या लगन रखते हुये शरीर छूटे, तो हो सकता है तुम लोग फिर इस परिवर्तनशील

जगत में न आओ। इसका कोई दावा नहीं अनुमान है। इसलिये मेरी इच्छा है कि मालिक तौफीक दे कि मैं शरीर के स्थायी त्याग के बाद बता सकूं कि मेरा परिणाम क्या हुआ।

स्वामी जी के इस शब्द में उत्पत्ति और प्रलय का वर्णन है। इसका वर्णन शास्त्रों ने भी किया है। दूसरे सम्प्रदायवादी भी प्रलय को मानते है। यह प्रलय और उत्पत्ति एक तो बड़े पैमाने (परिमाण) पर होती है। एक हर जगह छोटे परिमाण में भी होती रहती है। हमारे शरीर के अन्दर छोटे-छोटे खाने (Cells) हैं। डाक्टरों के विचार में अनेकों खाने (Cells) मिटते रहते हैं और नये बनते रहते हैं। प्रत्येक शरीर में हर समय उत्पत्ति और प्रलय होती रहती है। प्रत्येक सातवें वर्ष मनुष्य के शरीर के ढाँचे और मन के विचारों में परिवर्तन आता रहता है। इस परिवर्तनशील जगत में मेरी समझ में जो आया, अपने कर्म भोग वश कह चला! क्या कह चला? यही कि यहाँ इस सृष्टि में हर समय छोटे से छोटे

रूप में और बड़े रूप में उत्पत्ति और प्रलय होती रहती है। इस बात का विश्वास कर लेने से तथा इस बात का ज्ञान होने से क्या लाभ? यही कि हम यहां रहते हुए जो दुख सुख होता है इस ज्ञान के आधार पर उसे कम महसूस करेंगे। इसलिये ईश्वर या परमेश्वर से बढ़कर गुरु का दर्जा है। चूँकि ईश्वर की सृष्टि में तो अपनी प्रलय होती ही रहती है। कोई वस्तु एक रस रह नहीं सकती, न शारीरिक, न मानसिक न आत्मिक अवस्था। गुरु की संगत से ज्ञान हो जाता है। यह ज्ञान या विवेक ही हमको इस परिवर्तनशील जगत में थोड़ी बहुत शान्ति दे सकता है और सदा सर्वदा बचने के लिये यह नाम है। हिन्दू शास्त्र इसे शब्द ब्रह्म कहते हैं। गरुड़ पुराण में भी यही वर्णन है कि जब तक मनुष्य की सुरत (जीवन धार) शब्द ब्रह्म के देश में नहीं जाती उसका आवागवन समाप्त नहीं हो सकता। इस संसार में सुख दुख, नेकी बदी, पाप पुण्य, जब से दुनिया बनी है और जब तक यह स्थित

है, सदा ही रहेंगे। हाय हाय करने से कुछ लाभ नहीं। थोड़ा बहुत लाभ केवल अपनी वासना को ठीक रखने से है, मगर सच पूछो तो मैं इस परिणाम पर आया हूं कि वासना का ठीक रखना भी हमारे वश में नहीं है क्योंकि जिस प्रकार की प्रकृति किसी मनुष्य की है और जिस प्रकृति को बनाने वाले सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, तारागण, जल वायु और भोजन हैं वह हमारे वश में नहीं। जैसा - जैसा ईश्वर की सृष्टि में दौर आया है संसार के प्राणियों के वैसे ही भाव और विचार स्वयं बदलते रहते हैं। इस का नाम है कालचक्र। हमारी जो सुरत है वह कालचक्र में आई हुई है। जिस तरह इस दुनिया के पैदा करने वाला विष्णु या कोई अन्य शक्ति संसार में परिवर्तन लाने के लिये अवतार लिया करती है, इसी तरह सुरत का जो भंडार है जिसे सतलोक कहते हैं वहां से भी प्रकृति के नियम के अनुसार सत का अवतार होता है। वह सुरतों को अपने घर का, सतलोक का, चौथे पद का ख्याल देकर उनको

इस संसार से हमेशा को निकलने के लिये संस्कार देता है मगर उसके संस्कार से केवल वही लाभ उठा सकते हैं जो इस परिवर्तनशील जगत में अनुभव के बाद उकता गये हैं या थक गये हैं। इसलिये संत मत की शिक्षा साधारण जनता के लिये नहीं है। मेरी समझ में यह बात आई है। दावा कोई नहीं है। इस समय इस संतों की शिक्षा को वर्तमान गुरुमत या इसकी शाखायें भूल गई हैं। दुनिया को इन गुरुओं ने अपने पीछे अपना ध्यान बताकर अपने पंथों, अपनी गद्दियों या डेरों के साथ बांधने की कोशिश की है जो गलत है। इसलिये कुदरत ने मेरे दिमाग को मांग और पुर्ति (Demand and Supply) के नियम के अनुसार विवश किया कि मैं इस सच्चाई को खोल जाऊं ताकि जो जीव हमेशा के लिये इस संसार के चक्र से बचना चाहते हैं वे अपने अन्तर "शिव संकल्पमस्तु” रखते हुये अपना इष्ट शब्द ब्रह्म या नाम रखें ताकि उनका निस्तारा हो सके।

मेरी खोज का परिणाम

आस अब किसकी करूं, जब दास तेरा हो गया।
मैं हुआ तेरा तो तू भी, स्वामी मेरा हो गया॥१॥

तू है मेरे साथ पल छिन, क्यों हो अब चिन्ता कोई।
मेरे घट में जब तेरे, रहने का डेरा हो गया॥२॥

शीश पर तूने दया का, हाथ रख परिचय दिया।
मैंने समझा काल का, सब हेरा फेरा हो गया॥३॥

जग नहीं स्थिर, न स्थिरताई जग की वस्तु में।

यह तो चिड़िया रैन का, सचमुच बसेरा हो गया॥४॥
राधास्वामी नाम का, सुमिरन हो उठते बैठते।
नाम भव के सिन्धु के, तरने का बेड़ा हो गया॥५॥

चार दिन से 'ईश्वर क्या है, मालिक क्या है' के विषय पर अपना अनुभव कहता आ रहा हूँ। कल सुबह के सत्संग के पश्चात् दोपहर को इसी धुन में समाधि में चला गया। कहाँ गया? क्या हुआ? होश आया तो ऐसा भान हुआ कि जिसकी मैं खोज करता था वह इतना सूक्ष्म है जैसे पुष्प की सुगन्ध होती है। वह जो सूक्ष्मपना है वहां न तो प्रकाश है, न रुप है न रंग है। फिर मालिक क्या निकला? यही कि न वह स्थूल है न सूक्ष्म है न कारण है। न वहाँ प्रकाश है न शब्द है। उस अवस्था का प्रभाव अब तक दिमाग पर मौजूद है। जो कुछ मैंने मालिक का रुप देखा क्या,

किसी और महात्मा या संत के अनुभव ऐसा है? कबीर का कथन है :-

ऐसा लो तत ऐसा लो, मैं केहि बिधि कथौं गँभीरा लो।
बाहर कहाँ तो सतंगुरु लाजै, भीतर कहूँ तो झूँठा लो।
बाहर भीतर सकल निरंतर, गुरु परतापे दीठा लो॥
दृष्टि न मुष्टि न अगम अगोचर, पुस्तक लिखा न जाई लो।
जिन पहिचाना तिन भल जाना, कहे न को पतियायी लो॥
मीन चले जल मारग जोवै, परम तत्त धौं कैसा लो।
पौहप वास हूं ते कछु झीना, परम तत्त धौं ऐसा लो॥
आकासे उड़ि गयौ बिहंगम, पाछे खोज न दरसी लो।
कहैं कबीर सतगुरु दाया तें, बिरला सतपद परसी लो॥

कबीर भी वही कहता है जो मेरा अनुभव निकला। वह भी यही कहता है कि वह तत्व कैसा है। जिस मालिक को दुनिया ढूँढती फिरती है जिसके नाम पर करोड़ों सम्प्रदाय बन गये, वह क्या है? वह सूक्ष्म से सूक्ष्म, कारण का भी सूक्ष्म एक परम तत्व है

जो फूल की सुगन्ध से भी सूक्ष्म है। आज इसको कौन समझेगा? शब्दों के रूप में तो वर्णन नहीं किया जा सकता क्योंकि विचार में नहीं आता, जुबान से कहा नहीं जाता। यदि कोई जुबान से या विचार से इसको वर्णन करता है तो सतगुरु को लाज आती है अर्थात् इसको जुबान से कहता हूँ या ख्याल करता हूँ तो चूँकि गुरु नाम है अनुभव का और वह अनुभव में आ नहीं सकता, लाज आई। यदि यह समझूँ कि मेरे अन्तर है तो झूठ है क्योंकि वह तो किसी के अन्तर है नहीं उसके अन्दर सारी सृष्टि है। वही परम तत्व जो है वही आधार है। जो आधार है वह किसी के अन्तर कैसे आयेगा।

आकासे उड़ि गयौ विहंगम, पाछे खोज न दरसीलो।

ढूंढता चला आ रहा हूँ। क्या ढूंढा? यही कि शेष कुछ नहीं। केवल एक परम तत्व है। हिन्दू शास्त्र उस मालिक को परम तत्व कहते हैं। मैंने अपने अनुभव को अपने शब्दों में वर्णन

किया है। जीवन क्या है? चैतन्य का बुलबुला है। इस तरह कि बुलबुला अपने रूप में विलय हो जाता है, उसके पीछे निशान तक नहीं रहता। जब बुलबुला पानी में मिल गया तो कोई चिन्ह नहीं रहा। ढूँढने वाली वस्तु इसको सर्गुन निर्गुन मानती हुई चली। ज्ञान हुआ। यह सर्गुन निर्गुन जिसकी मैं पूजा करता था वह तो मेरे मन का बनाया हुआ परमेश्वर था। इसका ज्ञान आप सत्संगियों से हुआ। फिर प्रकाश में गया, शब्द को सुना। ख्याल आया। प्रकाश देखने वाला और है और प्रकाश और है। जो वस्तु शब्द को सुनती थी वह और है और शब्द और है। यही कुछ मैंने इन सत्संगों में वर्णन किया। खोजी हूँ। कल उसकी खोज की। जो शब्द और प्रकाश का साक्षी है वह क्या निकला? वही परम तत्व! मैं जब वहाँ गया तो पीछे कोई निशान न रहा।

इसलिये ऐ इंसान! तू अपने अज्ञान के कारण अनेकानेक सम्प्रदाय और पंथ बना बना कर असलियत से गाफिल हो रहा

है। उसका तो किसी ने अन्त पाया ही नहीं। जो ढूंढने गया, वह अपना अस्तित्व मिटाकर वह हो गया। इस अनुभव के आधार पर मैंने "मनुष्य बनो" की आवाज उठाई है। धार्मिक उन्मत्तता त्याग दे। यदि उसे मिलना चाहता है या अपने स्वरूप में जाना चाहता है तो केवल किसी पूर्ण पुरुष का सत्संग करके अपने भ्रम को मिटा और अपने अन्तर में सुमिरन ध्यान और भजन के द्वारा वही हो जा और जब तक दुनिया है अपने जैसा सबको समझकर एक दूसरे के काम आ, सहायता कर। अपने जीवन को सुखदायक बनाने का प्रयत्न कर। यह है मेरी ८२ वर्ष की मालिक की खोज का परिणाम।

मैं बहुत कुछ संतों के बारे में सुना करता था कि यह बड़े महापुरुष होते हैं इनमें इतना शक्तियाँ होती हैं। मैं होश में आकर सोचता हूँ कि क्या मैं किसी का कुछ भला कर सकता हूं। इसको आजमाना चाहता हूँ। होश में आकर अपने मिलने वालों,

मित्रों, सम्बन्धियों का भला चाहता हूँ और जीवन बिताने का ढंग और सच्चा ज्ञान वर्णन करता रहता हूँ। यदि दूसरों को मेरी संगत, मेरे दर्शन से कुछ लाभ पहुँचता है तो समझ लें कि कोई संत कुछ कर सकता है और यदि नहीं पहुँचता तो मैं जोरदार शब्दों में कहूँगा कि कोई संत सिवाय दूसरों के भ्रम और शंकाओं को दूर करने के, वह भी यदि कोई जिज्ञासु हो तो, और कुछ नहीं कर सकता। यह सब जितनी बातें हैं रोचक और भयानक हैं। यथार्थ बात यह कि ऐ इंसान तुझको जो कुछ मिलेगा या तो उस कुदरत के खेल से मिलेगा या तेरे अपने कर्म से मिलेगा। यह मेरा अनुभव है।

मैं सच्चे हृदय से चाहता हूँ कि भारत वर्ष में इंसानियत आये, हममें एकता आये, प्रेम रहे, हमको सच्ची बुद्धि मिले। यह भी इसलिये कहता हूं कि मेरे जिम्मे दाता दयाल ने निबल अबल अज्ञानी जीवों की सहायता, जगत कल्याण या जीवों को

भवसागर से पार करने का काम दिया था। मालुम नहीं उनकी यह आज्ञा मेरे अज्ञान को मिटाने के लिये प्रोत्साहन के ख्याल से थी या इसमें कोई सत्यता है। मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया।

मेरी खोज का परिणाम (लगातार)

हरि दरजी का मरम न पाया, जिन यह
चोला अजब बनाया॥१॥
पानी की सुई पवन कै धागा, आठ मास
दस सीवत लागा॥२॥
की पाँच तत्त कै गुदरी बनाई, चाँद सुरज
दुइ थेगली लगाई॥३॥
जतन जतन करि मुकटे बनाया, ता बिच
हीरा लाल जड़ाया॥४॥
आपहि सीवें आप बनावे, प्रान पुरुष
को ले पहेरावे॥५॥

कहै कबीर सोई जन मेरा, या चोले का करें निबेरा॥६॥

सारी रात इसी ख्याल में था कि भगवान दुनिया बनाने वाला कहाँ है? कैसे बनाई? पहिले कोई समय था जब अपने मन के विश्वास से, भाव से किसी ईश्वर को, परमात्मा को या किसी शक्ति को पैदा करने वाला मानकर उसकी पूजा किया करता था मगर जब से यह पता चला कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता, लोग अपने ही विश्वास या भाव से मुझे गुरु या मालिक का अवतार मानकर पूजते हैं और आनन्द लेते हैं अपनी मनोकामनायें पूरी करते हैं तो मुझे निश्चय हुआ कि यह तो मेरे अपने ही या हर एक आदमी के अपने ही विश्वास भाव या ख्याल का खेल था। यदि मैं यह कह दूँ कि प्रकाश भी है तो प्रकाश को भी अपने अन्दर आप ही देखता हूँ। क्या पता मैं ही अन्तर से प्रकाश पैदा करता हूँ या शब्द पैदा कर लेता हूँ। जो महापुरुष इस निष्कर्ष

पर पहुँचे उन्होंने आदमी को ही ईश्वर समझ लिया कि मैं ही कर्त्ता हूँ और मैं ही सब कुछ हूँ। इसी दृष्टि से कहता हूँ मगर मैं ऐसा कहने का हौसला नहीं करता क्योंकि यदि मैं ही सब कुछ हूँ तो अपने ख्याल की दुनिया को तो निस्सन्देह अपनी इच्छा के अनुसार बनालूँ मगर इस दुनिया को नहीं बना सकता। यह मेरा अनुभव है अब अनेक महापुरुषों, वेदान्तियों, या संतों ने यह विचार प्रगट किया कि मनुष्य का स्वरूप ही आदि कर्त्ता है मगर जब उनके जीवनों के हाल देखे कि कोई शारीरिक दुख से मर गया, पलटू साहब जैसे को दूसरे वैरागियों ने तेल के कढ़ाहे में डाल दिया तो फिर ख्याल गलत निकला। फिर क्या पता लगा। कबीर का कथन है:-

हरि दर्जी का मरम न पाया, यह चोला अजब बनाया॥

क्या यह झूठ है? कबीर जो आदि संत कहलाता है उसने मनुष्य को ईश्वर या खुदा नहीं कहा। यदि मनुष्य कुछ कर सकता

है तो केवल यह कि मन के संकल्प विकल्प को या अपने अन्तर की दुनिया को जैसा बनाना चाहे बना सकता है। यद्यपि मैं यह भी नहीं मानता। क्यों? क्योंकि मैं उस हरि को ढूंढने निकला था। हिन्दू जाति में पैदा होने के कारण ज्योतिष को मानता हूँ। मानता ही नहीं किन्तु मानने को विवश हूं। कल एक लड़के का जन्मपत्र ज्योतिषी को दिखाया। वह लड़का पढ़ना नहीं चाहता था। ज्योतिषी ने कहा इसके ग्रह ही ऐसे हैं। यदि इसके मा बाप इसे तंग करेंगे यह उनका शत्रु हो जायेगा दो वर्ष तक इसकी यही दशा रहेगी। जुलाई के बाद स्वयं ही पढ़ाई की ओर इसका रुझान हो जायेगा। ऐसे ही कई और घटनायें हुई जिनसे मुझे यह सिद्ध हुआ कि यह जितना खेल है यह उस हरि दर्जी का है। हर एक जीव जो दुनिया में आता है वह कुछ अपने पिछले किये हुये कर्म या कुदरत के कर्म या मौज आधीन घसीटा जा रहा है। किसी के कुछ वश में नहीं है। यदि कुछ वश में है तो अपनी

नीयत को शुद्ध रख कर अपने बचन और कर्म से शुद्ध रहने की कोशिश करें। फिर यदि मैं कबीर को महान अनुभवी और सच्चा मनुष्य न समझूं तो क्या समझूं।

मैं हरि को ढूंढने निकला था मगर उसका अन्त न पा सका। फिर क्या किया जाये! उसका मर्म तो मिलता नहीं। चाहे जितना दौड़ लो। तुम्हारा दौड़ना क्या मैं अपना दौड़ना देखता हूँ। ८२ वर्ष का हो गया। साधन अभ्यास किया। बाल की खाल निकाल दी। चूँकि मैं रात भर इसी ख्याल में था तो आज भी वही शब्द निकला। मैं सोचता हूँ कि अन्त तो उसका मिला नहीं, किसी परिणाम पर पहुँचा नहीं, सिवाय इसके कि यह कहूं कि तेरी इच्छा पूर्ण हो। भगवान! तेरी इच्छा पूर्ण हो। यह भगवान पर अहसान नहीं करता। विवश कहना ही पड़ा है। अब ८२ वर्ष के जीवन के बाद मेरे पास कोई चारा नहीं रहा। यद्यपि जितना चारा मैंने किया यह भी उस हरि दर्जी की मौज ही थी। अन्तरीय शब्द

सुनता हूँ, प्रकाश देखता हूँ, आनन्द लेता हूँ। जब यह वस्तुयें नई नई मेरे अन्दर उत्पन्न हुईं, दाता दयाल का रूप प्रगट हुआ, तो वह नई चीज थी। आकर्षित हुआ! प्रेम भक्ति का खेल खेला! फिर प्रकाश खुला, शब्द सुना। वह भी खेल खेले। अब आगे क्या है? एक वस्तु को प्रतिदिन देखने से चाहे वह कितनी ही अच्छी क्यों न हो या प्रतिदिन भोगने से मन उपराम हो जाता है और सम हो जाता है। धन मिल गया या बड़ा पद मिल गया कुछ दिन चाव रहेगा। फिर वह चाव समाप्त हो जायेगा। इसी तरह मुझे अभ्यास का चाव था। इन अन्तरीय अवस्थाओं के देखने का चाव था। इस कमालपुर वाली माई का भी यही चाव था। जब चाव या खुशी अधिक देर की हो जाती है तो फिर वह चाव चाव नहीं रहता किन्तु सम या सहज अवस्था आ जाती है। कबीर का कथन है-

कहे कबीर सोई जन मेरा, या चोले का करे निवेरा॥

कबीर का क्या भाव चोले से है? उसने चोले निबरने को क्या समझा? उसने कैसे निवेरा किया? मैं नहीं जानता। मैंने कैसे निवेरा किया! निवेरा करने के अर्थ है जब कोई काम शुरु होने के बाद समाप्त हो जाये तो हम कहते है कि काम निवेर गया। फिर उस काम की और आदमी का ध्यान नहीं जाता। अब मैं निवेरा कैसे करता हूँ। वह राम के मिलने, जानने, पहिचानने का खब्त जाता रहा क्योंकि इसका अन्त तो मिला। नहीं। क्या हुआ मुझे?

माला फेरुं न हरि भजूं, मुख से कहूँ न राम।
मेरा राम मुझ को भजे, तब पाऊं बिसराम॥

कबीर ने कहा है :- संतो!

सहज समाधि भली।

सहज समाधि की अवस्था में खोज नहीं रहती। वासना नहीं रहती। या यों समझलो कि फकीर निकला था राम को मिलने को। क्या मिल गया? उसका अन्त न मिला। हरि दर्जी

है वह जाने उसका काम जाने। जिसने बनाई है वह पता करता फिरे। स्वयं निवेरा करता फिरे। तो यही समझलो कि उसकी मर्जी है। जो कुछ हो रहा है हो रहा है। मैं दौड़ दौड़ कर थक गया।

दौड़त दौड़त दौड़िया, जहाँ लग मन की दौड़।
दौड़ दाड़ मन थिर भया, वस्तु ठौर की ठौर॥

अब जीवन कैसे गुजरता है? जिस तरह एक बच्चा जो मन में आवे करता है। न उसे आगे के लाभ का ध्यान, पहले घाटे का ख्याल। अब मेरे जीवन का अनुभव यहां आ रहा है कि भूत, भविष्य और वर्तमान मुझे एक ही भासते हैं। कबीर ने कहा है-

कबीरा तीनों तार मिलाई।

मैंने ऐसा निवेरा किया! यह निवेरा किसने कराया? दाता दयाल ने। उन्होंने जब मैं इस भ्रम में था कि हरि कौन है, किस तरह दुनिया बनी, किसने बनाई, क्यों बनाई तो मेरे इस

दीवानेपन में दाता दयाल ने मुझे हौंसला दिया, सहारा दिया, मुझ से खेल खिलाया। अब खेल खेल चुका। अब जो अवस्था आ गई इसका नाम है जीवन मुक्ति, सहज समाधि, समता अथवा विदेह गति। जीवन है। इसके जो खेल हैं उनमें फंसाव नहीं है। इसका नाम है जीवन मुक्ति। मेरी समझ में यह आया है। शरीर के स्थायी त्याग के बाद यदि मौज को स्वीकार हुआ तो शरीर से बाहर निकल कर यदि मेरा कुछ बाकी रहेगा तो बता जाऊंगा। वह भी हरि इच्छा पर है।

॥इति॥